डॉ. राजीव मेजर

सजनी

सच की सूत्रधार

BlueRose ONE .com
Stories Matter
NewDelhi • London

BLUEROSE PUBLISHERS
India | U.K.

Copyright © Dr. Rajeev Major 2025

All rights reserved by author. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author. Although every precaution has been taken to verify the accuracy of the information contained herein, the publisher assume no responsibility for any errors or omissions. No liability is assumed for damages that may result from the use of information contained within.

BlueRose Publishers takes no responsibility for any damages, losses, or liabilities that may arise from the use or misuse of the information, products, or services provided in this publication.

For permissions requests or inquiries regarding this publication, please contact:

BLUEROSE PUBLISHERS
www.BlueRoseONE.com
info@bluerosepublishers.com
+91 8882 898 898
+4407342408967

ISBN: 978-93-7139-038-5

Cover design: Daksh
Typesetting: Tanya Raj Upadhyay

First Edition: July 2025

परिचय

लेखक डा. राजीव मेजर मूल रूप से हिमाचल प्रदेश, जिला ऊना, तहसील अम्ब के पंजोआ गाँव से हैं। गाँव के सरकारी प्राईमरी स्कूल में प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करके सरकारी हाई स्कूल ठठल से दसवीं पास करके एस. वी. एस. डी. कालेज भटोली से B. Com. की Degree पूरी की। तत्पश्चात हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय शिमला से M. Com, M. Phil, Phd. LLB तथा PGDPM & LW किया। छात्र जीवन में लेखक ने छात्रों के हित में कार्य करते हुए कई छात्र आन्दोलनों में हिस्सा लिया और हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय शिमला की केन्द्रीय छात्र संघ के महासचिव और प्रधान पदों पर निर्वाचित हुए। इसी विश्वविद्यालय में कई बुद्धिजीवियों, लेखकों और दर्शनशास्त्रियों के सम्पर्क में आकर लेखक का रूझान लेखन की ओर बढ़ा। लेखक ने हिमाचल प्रदेश के कई महाविद्यालयों में सहायक आचार्य और सह आचार्य के पद पर कार्य किया। सेवानिवृत्ति के पश्चात वर्तमान में डा. राजीव मेजर जिला न्यायालय ऊना में अधिवक्ता के रूप में अपनी सेवाऐं दे रहे हैं।

डा. राजीव मेजर अपने संस्कारों, शालीनता तथा परमार्थ जैसे गुणों के लिए प्रशंसा पात्र रहे हैं। धरातल पर कई विषयों पर जनमानस की आवाज़ बनकर उभरे तथा आमजन के प्रेरणा-स्त्रोत-स्तम्भ रहे हैं। मेरे लिए डा. राजीव मेजर के बारे में कहना सदैव एक आनन्द घटक क्रिया रहती है।

बृज नन्दन सिंह राणा

अधिवक्ता जिला कचहरी ऊना हि0 प्र0

आमुख

मैं अपनी पुस्तक ''सजनी-सच की सूत्रधार'' समस्त साहित्य प्रेमियों के सम्मुख प्रस्तुत कर रहा हूँ। नौ खण्डों पर आधारित यह मेरी प्रथम काव्य-रचना है। इस रचना मे 'सजनी' कोई प्रेयसी नहीं बल्कि सोच के साथ समान्तर चलने वाली प्रगतिशील चेतना और व्यक्तिगत भावुकता के सामाजिक चिन्तन में परिवर्तित होने की यात्रा है। मानवीय मूल्यों पर आधारित सामाजिक परिवर्तन के लिये आमजन को प्रेरित करने का प्रयास करती इस कविता में सजनी प्रत्येक व्यक्ति के अन्तर्मन मे स्थित सृजन शक्ति , साकारात्मक दृष्टिकोण और सामाजिक चेतना ही वास्तविक सजनी है। यह कविता प्रेम और विछोह के साथ तत्व के क्रमिक विकास , वैज्ञानिक दृष्टिकोण और श्रम-शक्ति के महत्व पर बल देती है और विश्व चेतना के विकास का समर्थन करती है। यह रचना , प्रश्नों और तर्को के आधार पर मनुष्य को एक अनन्त यात्रा पर ले जाने का प्रयास करती है। मैं अपने इस प्रयास में सफ़ल हुआ अथवा नहीं, इसका निर्णय तो पाठकगण ही करेंगें परन्तु मुझे विश्वास है, कि ''सजनी-सच की सूत्रधार'' रचना, एक नई राह की अन्वेषक और नूतन समाज की सीढ़ी जरूर बनेगी क्योंकि पूंजीवादी सभ्यता की भागमभाग में जहाँ रचनाऐं अपने आस्तित्व को खोजने पर मजबूर हैं, वहीं यह रचना अपने सम्पूर्ण आस्तित्व के साथ आगे बढ़ती है और प्रत्येक मानव को उसके वजूद का एहसास करवाने का प्रयास करती है।

डा. राजीव मेजर

“सजनी-सच की सूत्रधार”

खण्ड-1

रूपहीन सब जगत व्याप्त,
जिसका न तन, न मन है।
तत्व के उस गुण का कविता,
मूक , मौन सा वर्णन है।
अनन्त, अनादि की अभिव्यक्ति
को सजनी का नाम दिया,
सोच की अचरज भरी यात्रा,
संग लेखनी सज्जन है।

क्या था इस सृष्टि में पहले?
ठोस पदार्थ या चेतन।
दर्शन के व्याख्याता करते
अपने-अपने विश्लेषण।
कोई कहता ब्रहमाण्ड से,
दूर विचारों का है स्रोत।
कोई कहता तत्व मूल है,
तत्व से हुआ पैदा मन।

बिना परख़ किए, मत अपनाकर,
परिभाषित किए विधी-विधाता।
प्रकृति के गूढ़ रहस्यों का,
पाखण्डी उपहास उड़ाता।
सच ढूँढने उठी लेखनी,
निर्मित किए पृष्ठों पर पथ।
‘सजनी’ युक्त पथिक कोई बिरला,
इन राहों पर चल पाता।

अचेतन थी सर्व सृष्टि,
कोटि-कोटि वर्षों तक।
निराकार , साकार पर फैला,
महा अन्धकार का पट।
समय और प्रकाश निरन्तर
सूक्ष्म रूप में सिमटे थे,
शून्य रूप में ध्वनि कहीं पर,
न घट था, न घट का तट।

कैसे हुई जगत उत्पत्ति
किस रूप में प्रथम पहल,
गतिहीन , अचेतन कण में
किसने पैदा की हल-चल।
सर्वमान्य सिद्ध नियम
वैज्ञानिक हमको समझायें,
एक सूक्ष्म अणु के भीतर
सीमित था ब्रहमाण्ड सकल।

घूम रहा था अणु अकेला
कोई दूर न कोई निकट,
हुआ एक विस्फ़ोट भयानक
और गया परमाणु फ़ट।
काल कोख के सन्नाटे में
स्वर के संग तरंग उठी,
ब्रहमाण्ड की प्रथम तरंग में
गति बन सजनी हुई प्रकट।

निराकार को मिली आकृति
पैदा हुए ध्वनि, प्रकाश
धरती आई अग्नि बन कर,
वायु बन आया आकाश।
रुकी नहीं नव की उत्पत्ती
नष्ट पुरातन होते गये,
यही आकर्षण है सृष्टि का
चलता जन्म के संग विनाश।

अगणित अण्ड, पिण्ड हुऐ पैदा
शुरू समय और गूँजा स्वर।
क्रमिक विकास हुआ तत्व का,
ठहरा नही कहीं क्षण भर।
परी कथा, परलोक कहानी
का वृत्तान्त नही कविता,
आधारित है मेरी सजनी
भौतिकी के सिद्धान्तों पर।

इसी श्रृखंला आई रौशनी
अम्बर में सूरज चमका,
हिला समन्दर, कड़की दामिनी
मेघों से पानी टपका।
मिट्टी में सजनी के अंकुर
फूट फ़ैल गये चहुँ दिशा,
तत्व में चेतनता आई
देख भाग गई घोर निशा।

भू आकार हुआ परिवर्तित
पत्थर और पहाड़ बने,
जड़ें तरु की भू के भीतर
नभ पहुँचे वृक्षों के तने।
सर्वप्रथम वनस्पति रूप में
होने लगा प्रफुल्लित जीवन,
हरे रगं में रंगी वसुन्धरा
चहुँ और वन उगे घने।

इसी कड़ी में जन जीवन का
क्रम मे लगा क्षेत्र बढ़ने।
मिट्टी की प्रगति का रहस्य
छुपा हुआ मिट्टी की जड़ में।
अब तक का वैज्ञानिक दर्शन
हमें यही समझाता है,
नहीं दिव्यता इसमें कोई
जीव जन्म भया कीचड़ में।

उसी जीव से जल में जन्तु
धरती पर पनपे सरीसृप।
उसी से ख़ग आकाश मे उड़े
उसी से ही मानव निर्मित।
पशुओं भाँति विचरा मानव
युगों-युगों कई वर्षों तक,
चला अकेला, रहा समूह में
फिरा परख़ता हित अनहित।

कारण और परिणाम की जड़ में
दो धुरियों का द्वन्द सजनी।
इस गुण से करे तत्व की
विकास क्रिया आरम्भ सजनी।
हर दिन नव स्वरूप पदार्थ
और पुरातन नष्ट हुआ,
चेतनता से विकसित मनुष्य
इस धरती पर प्रकट हुआ।

चला सृष्टि से अन्तर्द्वन्द
दो हाथ, दो पाँव बने।
वन, वनचर और आदिमानव
परस्पर धूप व छाँव बने।
धीरे-धीरे पनपी सभ्यता
सुदृढ़ हुऐ सामाजिक हित,
छोटे-छोटे मानव समूह से
बने कबीले, गाँव बने।

स्वार्थ, परमार्थ के मध्य
जन्म लिया सजनी घर-घर।
आस, विकास से प्रेरित हो किये
पथिकों ने निर्मित नव पथ।
भूखे के लिए रोटी सजनी
प्यासे की सजनी पनघट,
मूल श्वासों का सजनी संग
जीवन दौड़ रहा सरपट।

किसी काल्पनिक चमत्कार का
'सजनी' न करती गुणगान।
गतिशील चिन्तन से निकला
इसका दृष्टिकोण व ज्ञान।
जनवाद से प्रेरित कविता
सोच प्रगति वादी है,
इस ही भूमि का निरीक्षण
नहीं कोई कोरा अनुमान।

नश्वर जीवन बने अनश्वर
हल प्रकृति ले आई,
पुरूष- स्त्री के मध्य
आकर्षण बन सजनी आई।
वाद विवाद की सहज क्रिया से
सजनी बन आई सम्वाद।
सजनी से आबाद बस्तियां
सजनी से भोगों मे स्वाद।

जीव व जीवन करे जागृत
सजनी कभी न सुप्त भई।
जलचर, थलचर, नभचर के सगं
सदा चेतना युक्त भई।
निस्वार्थ व प्रेम की जाई
अभय-अजय की अथक-पथिक,
अमर बेल मानव प्रगति की
काल-जाल से मुक्त भई।

सर्वोपरि सिद्धान्त प्राकृतिक,
यह सन्देश हमें पहुँचायें।
पीछे मुड़कर नहीं देखती,
अन्तहीन पथ बढ़ती जाये।
सच की बोली, सच की भाषा,
हमें बताकर और पढ़ा कर।
सृष्टि से सम्वाद बनाना,
'सजनी' हमको सिखलाऐ।

निष्काम भाव से कर्म कमा कर,
शिख़र छुआ जा सकता है।
दर्द स्वार्थ का सह कर,
जीते जी मुआ जा सकता है।
'सजनी' की अनन्त यात्रा,
सबको पाठ पढ़ाती है।
पर हितार्थ पथ पर चल कर,
अमर हुआ जा सकता है।

कौन ? कहाँ पर इसको ढूँढे
सजनी के हैं रूप अनेक।
निस्वार्थ में प्रकट हो जाती
छुप जाती स्वार्थ को देख।
आती कभी प्रेमिका बनकर
दिखे कभी मातृत्व में,
सहज, सरल रहे नेक दिलों में
बसती है भ्रातृत्व में।

इस दुनिया में जो जीवन के
पक्ष खड़ा वह सजनी है।
सज्जनता लिए , दुर्जनता के
साथ लड़ा वह सजनी है।
जो सारे जीवों में परस्पर
समरसता की जननी है,
विध्वंस की तुलना वर्तमान में
सृजन बढ़ा , वह सजनी है।

बीज बनें अंकुर, फिर पेड़,
पेड़ तनों को फैलाते,
उन्हीं तनों पर अपने घोंसलों
पर कई पक्षी रात बिताते।
अन्धकार से छीन उजाला
उसी समय सजनी आती,
जब सूरज की प्रथम किरण संग
गीत तरु पर ख़ग गाते।

मानव संग यथार्थ बदला
यहीं से हुआ आरम्भ दर्शन।
घटनाओं ने किया अचम्भित
आई कल्पना मानव मन।
यह सब ऐसे होता होगा,
सजनी दौड़ी बनकर सोच।
परलोकों की कल्पनाओं पर,
हुआ आधारित जन-जीवन।

कल्पनाओं ने दर्शन के संग,
पैदा किये विभिन्न धर्म।
धर्म किताबों ने समाज में,
व्यवस्थाओं को दिया जन्म।
इन सारी कड़ियों के मध्य,
'सजनी' बन आई विज्ञान।
तत्व के संग ही समाज का,
मानव समझने लगा मर्म।

पथ की सब बाधाऐं लाँघकर
लक्ष्य मिले वह सजनी है।
अज्ञान मिटा कर, चेतन होकर
तर्क मिले वह सजनी है।
हस्त लेखनी पकड़, सच का
भेद लिखे वह सजनी है।
प्रेम से जन्मे, प्रेम निभाऐ
प्रेम जने, वह सजनी है।

जीव महत्तव जीवन से,
मानव की उपमा मानवता।
जनहित से सामाजिक तन्त्र
गति मूल है तत्व का।
बिना प्रेम के कोई न प्रेमी
अक्षर बिन कैसी कविता?
बिन पात्र के ऐसा नाटक
ज्यों निर्गुण में गुणवत्ता।

‘सजनी’ तत्व का विश्लेषण,
यह सजीव, निर्जीव का पथ।
अन्तहीन मस्तिष्क यात्रा,
इस सृष्टि और जीव का पथ।
मानव बुद्धि अज्ञात को,
करे ज्ञात में परिवर्तित,
मलिन न होता फल भक्षण से,
यह आदम न ईव का पथ।

इस राह की सृजन है ‘सजनी’
‘सजनी’ ही इस पथ की सृजक।
स्रोत ज्ञान का पाँच इन्द्रियां,
भटक जाऐं तो बनते मिथक।
निस्वार्थ, निष्कपट भाव पर,
सजनी पहरा देती है।
इसी से बचती स्थूल प्रकृति,
इसी से मन में पलता कृतिक।

जन्म से लेकर मृत्यु तक
हर व्यक्ति के सगं रहती है।
समय, स्थान, व स्थिती देख कर
सजनी नहीं बदलती है।
नज़र पारखी रखने वाला
बिरला इसको पहचाने,
बद्नियत, दुष्कर्म छोड़कर
हर साँचे में ढलती है।

सजनी रही साथ ही मेरे
आये अगणित दुःख दुःखान्त।
सदा सोच में रही आज़ादी
रहे स्वतन्त्र मेरे सिद्धान्त।
बाधाओं के पार मन्ज़िलें
किन्तु मन रख स्थिर व शान्त,
सजनी मेरी जीवन यात्रा
सजनी है पथ का वृत्तान्त।

सजनी, वे सब लोग, मैं जिनके
संग चला, जो साथ चले।
सजनी वे सब पथ-प्रदर्शक
पकड़ जो मेरा हाथ-चले।
सजनी जिन लोगों को मैंने
सोच से पंक्तिबद्ध किया,
सजनी वे, जो बिछुड़े किन्तु
सगं सुबह और रात चले।

प्रेम बनी मैं बना प्रेमी,
जुदा हुई, विरह अपनाई।
कागज़ पर रच डाली रचना
शब्दों में जो, दी दिखलाई।
उसके पथ पर यश-अपयश को
निर्विरोध अपनाया मैंने,
सजनी मेरे जीवन में बन
जिन जिन रूपों में आई।

खण्ड-2

जब से होश सम्भाला मैंने,
साथ सदा माँ होती थी।
उसकी ममता 'सजनी' बनकर,
मुझ मैले को धोती थी।
वह आलिंगन मेरी दुनिया,
उसके सम्मुख सब कुछ, तुच्छ।
मेरे हँसने पर माँ हँसती,
मैं रोता माँ रोती थी।

बचपन बीता युवा हुआ मैं
उर का बदला वेग बहाव।
सजनी का स्वरूप बदल गया
बदल गए मेरे मन के भाव।
माँ की लोरी प्रति न रही
अब पहले सी उत्सुकता,
एक चेहरे पर टिकी दृष्टि
बदले सब स्वभाव, लगाव।

खड़े हुए अवरोध सहस्र,
किन्तु खण्ड न हुई आशा।
ज्यों ज्यों बढ़ने लगी निकटता,
तीव्रतम हुई अभिलाषा।
उसको अपनाने की धुन में
समय बीतता जाता है,
मैंने सजनी की गढ़ डाली
स्वंय-केन्द्रित परिभाषा।

अब एकांत में रहना भाये,
महामौन भी शोर हो गए।
इस जगती को पा लेने के
बल-छल भाव-विभोर हो गए।
बतियाना चाहूँ ख़ग, नदिया,
पुष्प, ओस की बूँदों से,
अब सारी सृष्टि के हेतु
मेरे सम्बोधन और हो गए।

युगों-युगों से वेदनाओं के
पथ पर चलता रहता हूँ।
मौन की निर्जन पगडण्डियों पर
धूल-शूल सब सहता हूँ।
समय आ चुका अब अन्दर का
प्रेमी माँगे अभिव्यक्ति।
अण्ड, पिण्ड, ब्रहमाण्ड रोकते
पर मैं तुमसे कहता हूँ।

चल सजनी एक गाँव बसाऐं
गाँव हो तेरे आँचल जैसा।
रात गेसुओं सी ठण्डी,
दिन निर्मल, मन चंचल जैसा।
भोर भये कोई चिड़िया गाऐ,
साँझ गुटरुगूँ करे कबूतर
तेरे अधरों से तपे दोपहरी,
कोई जले मुझ पागल जैसा।

दूर अनन्त से बहुत दूर,
एक घाटी हो तेरी बाहों सी।
कुछ घर तेरी बातों जैसे,
एक बस्ती तेरी निगाहों सी।
तेरी पायल की झन्कारों पर,
जब रात चाँदनी झूम उठे,
उस बस्ती के हर नुक्कड़ पर,
कोई मेरा नग़मा गूँज उठे।

वन, उपवन मैं ढूँढू तुम्हें,
खुद को छुपा लेना मितवा।
फ़िर दूर पेड़ों के झुरमुट से,
मुझको सदा देना मितवा।
तेरी साँसों के मधुर स्वर पर,
मेरी धड़कन घटती बढ़ती रहे।
यूँ जीवन की पगडण्डियों पर,
आँख-मिचौली चलती रहे।

छेड़ वीणा के तारों को,
मस्ती में तुम्हें दुलारूँ मैं।
जब मन्दिर में शंख बजे,
व्याकुल हो तुम्हें पुकारूँ मैं।
नम आँखों से आहवान करूँ,
मीत मेरे अब आओ तुम।
तुझमें रब है या तुम ही रब,
यह भेद मुझे समझाओ तुम।

ऊँचे पर्वत से धाराऐं,
कल-कल करती बहती आऐं।
एक तीर हम-तुम बैठे हों,
लहरें हमें भिगो कर जाऐं।
आस-पास न हो कोई,
तेरी भीगी लट सुलझाऊँ मैं।
इस पल को जी भर जी लूँ मैं,
इस पल में मोक्ष पाऊँ मैं।

हृदय वृत्तान्त कहो तुम मुझसे,
मैं सुनकर कोई गीत लिखूँ।
भू-मण्डल की मूक सतह पर,
मैं चाहत की जीत लिखूँ।
मिले ऐसी गतिशील दिशा,
लक्ष्य न हो पथ चलता रहे।
मीत करो कोई ऐसा यत्न,
प्यार का दीपक जलता रहे।

ठहरा-ठहरा समय सजनिया,
हलचल का आभास नहीं
भाव , शब्द सब रुके हुए हैं
कोई इच्छा , कोई प्रयास नहीं।
भोग, योग, संयोग सार्थक,
जीवन की साकार संरचना।
तुम संग हो तो टिके हुए हैं,
मेरा यथार्थ, मेरी कल्पना।

जिस दिन मिली स्पर्श स्वीकृति,
रहा न उस दिन से निर्धन।
निज सुगन्ध की मेरे श्वास को,
तुमने पूर्ती की निर्विघ्न।
तेरे सामने छोटा बनकर
सबसे ऊँचा बन जाता मैं,
धन्यवाद! जो मुझे मिल गया
सजनी तेरा प्रेम सिंहासन।

लाल गुलाब भरी पिचकारी
सुबह, दोपहरी फ़ागुन की।
वटी में भँवरे और तितलियाँ
बात करें तेरे आवन की।
सूरज की किरणें धरती को
सजनी दें सन्देश तेरा।
ओस की बून्दें छूकर मुझमें
आस जगे तुझ पावन की।

सावन माह का भीगा दिन
जब उमड़ के बादल आया हो।
चरागाह के एक कोने में
तुमने मुझे बुलाया हो।
घास भरे समतल मैदान में
गौएं, बछड़े चरते हों।
मैं, तुम और कोयल की कूक,
संग वट वृक्ष की छाया हो।

उस छाया में हो संपूर्ण
इच्छा प्रेम के जाये की।
हस्त मिलन में रहे न सुध-बुध
अपने और पराये की।
मेरी आँखों में अश्रु हों
तेरे चहरे पर मुस्कान।
दूजे छोर बजे धीरे-धीरे
बंसी धुन चरवाहे की।

जेठ की गरमी कहर बनी जब
सूखे झरने, सूखे ताल।
अति क्रोधित होकर सूरज
नील गगन में जब हो लाल।
जँगल में सूखे वृक्षों पर
मिले नहीं पंछी को छाँव,
प्रेम विवश मिले, तपती छत पर
झुलसे हम दोनो के पाँव।

मेरी ख़ातिर तेरा समर्पण
अक्सर मुझको करे चकित।
झुलसे तलवों के छालों से
रिश्तों को मिलता अमृत।
जड़ व चेतन सम्बन्धों को
सीखे हम दीवानों से।
कड़क धूप में फिर अगले दिन
मिल होते, दो हठी तृप्त।

भीगी ओस से घास-पत्तियाँ
सर्द ऋतु, तम घोर निशा।
बिना लक्ष्य निकल पड़ूँ मैं
पता नही तुम कौन दिशा?
कुछ दूरी पर किसी मोड़ पर
मैं तुमसे टकरा जाऊँ।
वहीं समाधिस्थ हो जाऊँ
अमर हो मेरी जिजीविषा।

प्रत्येक स्थिती के अपने सुखः द्:ख
निज सत्ता हर मौसम की।
निर्जन-पथ पद-चिन्ह बतायें
किन राहों पर रौनक थी।
बदली ऋतुऐं, बदली स्थितियाँ
समरस रहा हमारा प्रेम।
इसी लिये कहते , चाहत
सर्वोत्तम है, सर्वोत्तम थी।

रोक सका न घना अन्धेरा,
तपती राहें, पथ के शूल।
प्रेम रथी का बे परवाह रथ
रहा उड़ाता नभ में धूल।
कोई क्रोधित , कोई प्रसन्न
कोई साथ और कोई विरुद्ध।
किन्तु हम दोनो की चाहत
परस्पर थी जीवन का मूल।

तेरे नाम के चर्चे करती
दुनिया रहती मुझ पर हँसती।
किन्तु मुझको तेरे सम्मुख
लगे तुच्छ सी सारी जगती।
तोड़ सकी न कोई मेनका
प्रेम समाधि प्रेमी की,
सजनी तुझको जीत मिली मुझे,
मृत्यु से लड़ने की शक्ति।

तुम संग बन्धा हुआ स्वतन्त्र
मैं एकल से विविध हो गया।
तेरा साथ मिला जीवन में
मेरा मनोरथ सिद्‌ध हो गया।
ऐसा लगता, मैं धरती पर
इसी वास्ते आया था।
तेरे नाम से नाम जुड़ा तो
मैं जग में प्रसिद्‌ध हो गया।

मेरे सामने एक ही मंज़िल
उस मन्ज़िल की एक ही राह।
तुझे ही देखूँ, तुझे ही सुनू
तुझ संग ही श्वासों की चाह।
असत्य, सत्य में परिवर्तित
इस सत्य से प्रेम अथाह।
तुझ संग जीवन बैकुण्ठ सा
तुझ बिन जीवन आत्मदाह।

यही प्रेम की अभय मुद्रा
यही कसौटी प्रीति की।
दाव लगाकर सब कुछ हारा
तब यह बाज़ी जीती थी।
किसने घाव गिने इस देह के?
क्या इस दिल पर बीती थी?
तुम्हीं यथार्थ थे मेरे और
यही भाग्य की नियति थी।

नहीं प्रेम का निश्चित मौसम
न ही निश्चित कोई घड़ी।
वहीं सवेरा हो चाहत का,
सजनी, जिस भी डगर खड़ी।
बन दिगंबर, चिता राख़ से
भर दे रंग मसाने में,
एक प्रेम की बून्द बहुत
जब लगी हो आग जमाने में।

छुपा था तेरी हँसी के अंदर
सब सृष्टि का कुशल क्षेम।
श्वास बन्द कर तेरा दर्शन
भोर संध्या का नितनेम।
तेरे दीये से लौ चुराकर,
चमक उठे मेरे जुगनू।
किसी के भाग्य होता सजनी
ऐसी चाहत ऐसा प्रेम।

खण्ड- 3

आह ! क्षणभंगुंर ब्रह्माण्ड,
परिवर्तित हुआ तुम्हारा मन।
प्रलय तक तुम साथ रहोगे,
भावनात्मक था यह आकलन।
प्रत्येक परिन्दे की उड़ान,
पाये पूर्ण विस्तार नहीं।
हर उगता अंकुर वृक्ष बने,
यह नियति को स्वीकार नहीं।

रवि नई लौ हर दिन लाये,
सदा वही न चन्दा-तारा।
सदा समान न वेग वायु का,
सदा एक सी बहे न धारा।
ऊपर-ऊपर सब स्थिर लागे,
भीतर सब कुछ बदल रहा।
दिखने को लगे सहज परन्तु
प्रेम कभी न सरल रहा।

जादू सिर चढ़ बोला था,
सुबह हुई और उतर गया।
मौन-मौन स्वीकारा उसने
मौन-मौन ही मुकर गया,
स्वपन महल सपना ही रहा,
जो सोचा था, नहीं हुआ।
मृग की तृष्णा का परिणाम,
जो होता है, वही हुआ।

समय सिकन्दर, निर्बल मन,
आ गई घड़ी जुदाई की।
जल के मन्थन से प्राप्त,
विष जैसी, तेरी विदाई थी।
नीलकण्ठ मैं न था सजनी,
ज़हर गटक कर पी न सका।
द्वन्दों में निर्णय कौन करे?
मैं मरा नहीं, पर जी न सका।

बिन पतवार श्वास की नौका,
डोल रही न मिला किनारा।
निज काया के बोझ तले मैं,
मेरे साथ - मेरी अश्रुधारा।
किस से करूँ शिकायत सजनी?
कौन प्रभु? और कौन प्रार्थी?
रण में खड़ा निहत्था योद्धा,
ढूँढ रहा, कहाँ गया सारथी?

इस पल सब कुछ बिख़रा-बिख़रा,
न कारण न बची आस्था।
महाशून्य में फिरूँ भटकता,
न लक्ष्य, न मिला रास्ता।
पीड़ित, पराजित व्यक्ति की,
समय नहीं करता परवाह।
खड़ा भविष्य की चौखट पर,
अन्धकार, अनन्त अथाह।

परिवर्तन के पथ स्पष्ट हैं,
सृष्टि के हैं सीधे ढंग।
जीवन की कुछ तस्वीरों में,
मानव न भर पाए रंग।
धीरे-धीरे रेत सरक गई,
हाथ में आई कुछ भी नहीं।
प्रेम, घृणा, सिद्धान्त, कल्पना,
यहाँ स्थायी कुछ भी नहीं।

भावनाओं के किसी रूप को
प्रकृति न करती स्वीकार।
उसके साँचे जो न ढले उसे
मिलता नहीं कभी आकार।
क्रोध, प्रार्थना, लोचन अश्रु
समय के सम्मुख, सब नश्वर।
कोई न शक्ति इस दुनिया में
बदले जो तत्व का सार।

दिए वास्ते मृत्यु के भी
किंतु बढ़ी और दूरी।
इस परिवर्तन का क्या कारण
यह चर्चा भी रही अधूरी।
कौन जानता काल गिद्ध की
चोंच में किसका माँस गया?
भाव-भंगिमा समझ न पाया
इच्छा थी या मजबूरी।

चली गई सुगंध वटी से,
ओझल जल बरसाकर मेघ।
न वायु में शीतल झोंके
न रवि में पहले सा तेज।
इस छोर पर पहुँचकर मुझको
अन्धेरों ने स्वंय चुना,
उस मंज़िल पर पहुँच गया
जहाँ गति मृत्यु की अति तेज।

निर्बल पग, पथ अति टेढ़ा,
घोर तमस करे, मन भयभीत।
शीश पराजय बोझ से लदा,
मौन गा रहा विरह गीत।
श्वास हाँफती, रूह काँपती,
पीछे छूट गये मनमीत।
दिशाहीन जीवन, निर्जन में,
ढूंढ रहा मृत्यु में जीत।

भाव, बाढ़ से हो अनियन्त्रित
लाँघे जब सीमाऐं मोह,
झरनों जैसी बहें पुतलियाँ,
प्रियतम से जब हो विछोह।
जन जीवन की पुस्तक में
यह व्यथा अवर्णित रहे सदा,
पृष्ठ इसे स्वीकार न करें
कलम नहीं ले पाती टोह।

फूल, शूल ही सोच में रहते,
रची किसी ने नहीं रिक्तता।
नेत्र अश्रु तो सब देखें,
देखे न कोई हृदय बिलखता।
प्रेम यात्री उन राहों का,
जिन राहों पर दिल टूटे।
मन के घाव कभी न दिखते,
न घावों से लहू निकलता।

दूर-दूर तक कोई नहीं
जो समझ सके यह कथा- व्यथा।
अपनी पीड़ा स्वंय ही सहो
यही रीत है यही प्रथा।
किसी और से किसी आस का,
अब कोई चिन्ह नहीं बाकी।
सगे-सम्बधी छोड़ चले गए
न साथी न सख़ा बचा।

जिन्हें उसारा था हाथों से
शिख़र गिरे आशाओं के।
अश्रु भरे नेत्रों सम्मुख
खड़े अवरोध बाधाओं के।
राह चलते उपहास झेलती
श्वास क्रिया इस जगती की,
टूटे चप्पू , नौका देख किया,
उलटा वेग धाराओं ने।

किसे कहूँ मुझको अपनाले
अब किस चौखट अलख जगाऐं?
कोई हाथ न साथ, करें प्रशंसा,
किस पर दोष लगाऐं?
जिस वृक्ष की छाया मुझको
सबसे शीतल लगती थी,
जड़ों के संग उखाड़ ले गई
उसी वृक्ष को तेज हवाऐं।

आज भी वैसे ही गलियों में
बच्चे डाल रहे किकली।
वैसे ही रवि चमका नभ में,
पर पहले सी धूप न खिली।
उजड़ा-उजड़ा लगा, न पहले सा,
उपवन में आकर्षण।
यूँ भँवरों की गूँज भी थी,
और हर टहनी पर थी तितली।

मन की पीर अति गहरी हो
सब जग निर्जन हो जाता है।
सम्बन्धों में दिल टूटे तो
व्यक्ति निर्धन हो जाता है।
सोच, समझ जब स्वाहा होती
वेदनाओं की लपटों में,
जीते जी अपने तन मन का
स्वंय विसर्जन हो जाता है।

कितना समय ले लेती ज़िन्दगी
तरुवर भांति फलित होने को।
किन्तु केवल एक क्षण ही
लेती मृत्यु घटित होने को।
ब्रहमाण्ड की दशा, दिशा की
परख़ की नही आवश्यक्ता,
अपना ही जीवन काफ़ी है
व्यक्ति के चकित होने को।

खंजर लेकर खड़ा यथार्थ,
विषधर हस्त ले खड़ी स्थिति।
दरवाज़े पर खड़ी मृत्यु,
वेश बदल कर बनी अतिथि।
निज आस्तित्व ही माँगता
मानव होने का प्रमाण,
पता नहीं इन सन्देशों की
क्या बोली और कौन लिपि?

ज्यों चिथड़ों संग लहू हो बिख़रा
किसी भयंकर युद्ध उपरान्त।
अथवा बचपन में हो जाऐ
शिशु की माता का देहाँत।
ज्यों शमशान में चिता हो जलती
खड़े हों सभी मौन उदास।
इस पर कौन कथा लिख पाऐ
कहे कौन इस का वृत्तान्त?

धुंध, धुऐं से परछाइयों पर,
लिखी नहीं जाती कविता।
जिस चूल्हे में जल ही जल हो
उस पर भोजन न पकता।
सकल जगत से मुँह छिपाकर
जब सो जाऐ सोच कहीं,
फिर काव्य के रचने को
शब्द कोई शेष नहीं बचता।

ज्यों छोड़ दे हृदय धड़कना
श्वास नली में श्वास थमी।
सोच ठहर गई मस्तिष्क में,
पिघल-पिघल कर बर्फ जमी।
दूर-दूर तक खाली पन है
कोई अपना न अपनापन,
बहुत दूर तक चला अकेला
संग चली आँखों में नमी।

सुबह लेकर आया सूरज,
नगर छोड़कर साँझ चला।
अंग जलाकर गई चाँदनी,
मुँह चिढ़ाकर चाँद चला।
अभी रात है लम्बी, चलो
अँधेरों से बतियाते हैं।
आँगन में जो जुगनू था,
अब घर की सीमा लाँघ चला।

नहीं चूकते मेरे अपने,
अब मुझ पर गुर्राने से।
सबके हाथ में पत्थर, क्यों कोई,
चर्चा करे दीवाने से?
वीरानों में गुज़र बसर है
थकी देह संग हारा मन,
कोई नहीं जो मेरे पक्ष में
करता बात ज़माने से।

दन्त कथा सी प्रेम कहानी
धरातल पर झूठ भई।
अक्षर और स्वर रूठे मुझसे,
जब से सजनी रूठ गई।
अपनी लिखी किताबों पर भी
नहीं मुझे विश्वास रहा।
गिरी स्याही पन्नो पर
और मेरी लेखनी टूट गई।

फ़िर से जग अपनाने आया,
हुआ विफ़ल प्रयास मेरा।
सूख चुका वह वृक्ष, था जिस पर
मेरा घरौंदा, मेरा बसेरा।
केवल एक उम्मीद सहारे,
कैसे पंछी उड़ पाये?
टूट चुके हैं पर मेरे और
सिकुड़ चुका आकाश मेरा।

खण्ड- 4

अम्बर की तृष्णा एक ओर,
एक ओर धरा की बाधाएं।
मन क्षितिज चूमना चाहता है,
पर तन की अपनी सीमाएं।
रहते हैं दोनों साथ मग़र,
सूरज से छाया मिले नहीं।
एक ऐसा घाव जरूरी है,
जो रिसे निरन्तर, सिले नहीं।

कहते, मन में अन्तहीन बल,
समाधान हर इसके पास।
नये रास्ते खोज निकाले,
करे निरन्तर जो प्रयास।
सहज समाधि घटित हुई,
मन से जब ये प्रश्न किया।
छोड़ स्वार्थ परमार्थ में, तुझे
पाने का प्रयत्न किया।

नहीं कोई उम्मीद परन्तु,
नज़र आ रहा मीत कोई।
बेसुध हूँ विरह में लेकिन,
सिरहाने रख गया प्रीत कोई।
महामौन चहुँ और मग़र,
कान सुनें संगीत कोई।
लगे मुझे कि मेरी ख़ातिर,
समय लिख रहा गीत कोई।

निर्जल भटका, निर्जन पथ,
निष्पलक नयन, निराहार जिआ।
सावित्री हठ-सत्यवान मृत,
यम ने फिर साकार किया।
तेरी यादों से शब्द मिले,
मन की पीड़ा से स्वरमाला।
कविता बन तुम खड़ी सामने,
लिए हाथ अमृत का प्याला।

मुरझा कर मैं बीज बना,
फिर उगा धरा पर खिल आया।
तिल-तिल मरा, जिया पल-पल,
तब जाकर तुझसे मिल पाया।
फल है किसी तपस्या का,
यूँ तुझसे सख़ा नहीं मिलते ।
यह सुख कीचड़ के भाग लिखा,
सागर में कमल नहीं खिलते।

मिटा राग़ उत्साहित मन में,
विजय पताका लहराये।
हो गई मेरी सफ़ल साधना,
जीवन में फिर तुम आये।
एक बूँद की आशा न थी,
सारा सागर पी लिया मैंने।
एक झलक तेरी पाकर सजनी,
कई जन्मों को जी लिया मैंने।

पढ़ा न किसी धर्म ग्रन्थ को,
अपनाया न किसी पन्थ को।
गया न किसी धर्म-स्थल पर,
न पूजा किसी साधु-सन्त को।
फिर भी मोक्ष की चाहत में,
लाखों सपने बुन लाया मैं।
सजनी तुझे सजाने को,
शूलों से अक्षर चुन लाया मैं।

ठहर चुकी जल की धारा को,
सागर पथ दिखलाऊँ मैं।
ख़ग जो उड़ना भूल चुके,
उन्हें याद गगन करवाऊँ मैं।
नव-पीढ़ी को नव-पथ दिखला,
नव संगीत सुनाता हूँ।
सजनी, तुम श्रृंगार करो,
मैं मृत्यु जीत कर आता हूँ।

मुझमें केवल एक ही गुण है,
मैं परिवर्तन में व्यस्त हूँ।
जिनके घर-दर पश्चिम खुलते,
उनके लिये सदैव अस्त हूँ।
अंगारों पर भीड़ जो खड़ी
लगी लपकने सूरज को।
उसे पंक्तिबद्ध करने को
बढ़ा हुआ अग्रिम हस्त हूँ।

जग त्यागूँ और वन भागूँ,
यह जीवन से है अन्याय।
यथा स्थिति स्वीकार करूँ,
यह राह न मन को भाये।
काव्य ज्योति लिए हाथ,
परिवर्तन का प्रयास करूँ।
मैं दुनिया के साथ जिऊँ,
मैं दुनिया के साथ लडूँ।

पर सजनी मैं एक मनुष्य,
दुविधाओं में फँसा हुआ।
जन्म से लेकर मृत्यु तक,
सीमाओं में बन्धा हुआ।
तुम कवि का अन्तर्बोध हो,
अजर-अमर कहलाती हो।
आदि काल से जन-जन को,
मुक्ति बोध करवाती हो।

इसीलिए कुछ नये शब्द,
मैं तुम्हें समर्पित करता हूँ।
अपनी सारी काव्य शक्ति,
तुझको अर्पित करता हूँ।
स्वर्ग नरक के खोज लिये हैं,
मानव ने अनगिनत रास्ते।
उसे धरा पर चलना सिखला,
जो आया चलने के वास्ते।

समझौतावादी मेरी प्रकृति,
लेकिन तुम मत ऐसी बनना।
समझौते, परिवर्तन में से,
तुम केवल परिवर्तन चुनना।
सुना-सुना कर नभ की बातें,
जग को मत भरमाना तुम।
धरा चीर कर सबकी ख़ातिर,
सुख की राह बनाना तुम।

किसी-किसी को अच्छा लगेगा
तेरा हाशिये पर जाना।
किन्तु लाखों-लाखों जन
चाहेंगे तुझको अपनाना।
तुम हर सकती हो वो पीड़ा
जिससे पीड़ित मानवता,
सबको तर्क की नाव बैठाकर
साथ वैतरणी तर जाना।

मत सोचना लोग तेरी,
प्रशंसा करने आयेंगें।
जड़वादी और अवसरवादी,
लाखों प्रश्न उठायेंगें।
प्रतिक्रिया और तिरस्कार की,
पीड़ा यदि सह पाओगी।
सत्य चेतना की ज्वाला और,
जननी तुम कहलाओगी।

कवि सम्मेलन में मत जाना,
वाह-वाह और ताली की चाह में।
प्रशंसा का भूखा मन भी,
बनता रोड़ा सच की राह में।
कहीं एकांत में बैठ अकेली,
स्वंय केन्द्रित मत हो जाना।
सबको अपनाने की ज़िद में,
कहीं भीड़ में मत खो जाना।

न चाहना, सभाओं में तुम्हें,
आदर सहित बैठाया जाऐ।
हो सकता है दोष लगें और,
तुम्हें अभियुक्त बनाया जाऐ।
बड़े गर्व से न्यायालय में,
अपना पक्ष बताना तुम।
चार पंक्तियाँ इस कविता की,
पढ़ कर चुप हो जाना तुम।

कितने ग्रन्थ और कथाऐं
परिवर्तन राह में बने दीवार।
तुम प्रगति के नव पथ हेतु,
मिट जाना बन जाना द्वार।
देख सके नव पीढ़ी तुझमें,
नया सवेरा, नया रवि।
दुनिया में आ पायेंगे तभी,
नयी कवितायें नये कवि।

झूठ मुफ़्त में मिल जाता है,
श्रम से सत्य होता अर्जित।
शायद दुनिया करदे सजनी,
तेरा पढ़ना, सुनना वर्जित।
ऐसा हो तो अपने जैसा,
परख़ खोजना कोई व्यक्ति।
नये रंग में, नये रूप में,
फ़िर पाओगी अभिव्यक्ति।

मुझको जी, जी कर लड़ना है,
मुझको लड़-लड़ कर जीना है।
मुझको अमृत की चाहत भी,
मुझको यह विष भी पीना है।
इसीलिए मन की दृढ़ता का,
आधार बनाया कविता को।
धरा बराबर बाँटने का,
औजार बनाया कविता को।

सोचा, क्यों अपनी ही वेदना,
लिख पन्नों का बोझ बढ़ाऊँ।
स्वार्थ को अभिव्यक्ति देकर,
अपनी लेखनी बाँझ बनाऊँ।
पहले लिखी किसी रचना का,
वर्णन या व्याख्यान करूँ।
सोच रहा क्यों ऐसा करके,
कविता का अपमान करूँ।

कविता वह जो मानव द्वारा
मानव शोषण रोक सके।
दुर्बल का अधिकार छीनते,
बलवानों को टोक सके।
कविता वह जो दर्द भूख का,
समझ सके समझा भी सके।
कविता वह जो नयी सुबह का,
गीत बने और गा भी सके।

झूठ जिऊँ और झूठ लिखूँ,
करूँ झूठ अर्थ- अर्थात।
स्वंय सिद्ध विद्वान कहाऊँ,
बनूँ विद्वता पर अभिशाप।
नहीं चाहता कभी करूँ मैं,
भागीरथी निरादर तेरा।
लेकिन तुम भी धो न सकोगी,
करूँ यदि मैं ऐसा पाप।

रचना हो उस तरुवर जैसी,
जिस पर देव न दानव हो।
जड़ में हो सामाजिक चिन्तन,
शाख़ाओं पर मानव हो।
किसी पंक्ति में बगिया के,
पुष्पों की न हो सुगन्ध।
अक्षर-अक्षर में से निकले,
जन कुरीतियों की दुर्गन्ध।

किसी फूल की प्रशंसा में,
क्यों कर कोई कथा लिखूँ?
इससे अच्छा सिर पर मैला,
ढोते नर की व्यथा लिखूँ।
पौंछ पसीना पल्लु से,
आँखों में भर कर पीती है।
महलों में बर्तन घिसती है,
तो झोंपड़पट्टी जीती है।

केवल कुछ प्रश्न उठाकर,
क्यों कहूं? कविता पूरी है।
समाधान न दे पाये,
वह रचना सदा अधूरी है।
नये लक्ष्य पाने का,
परिवर्तन मूल मन्त्र हो।
नये रास्ते खोजने को,
नव-पीढ़ी सदा स्वतन्त्र हो।

कई दिनों तक चली प्रक्रिया,
अन्त समय वह भी आया।
होने लगी अचेत इन्द्रियाँ,
शव में परिवर्तित काया।
अन्तर्मन में जगं छिड़ी
चेतन व अवचेतन की,
अन्धेरे में जली ज्योति
राह दिखी परिवर्तन की।

जिसने सही तमस पीड़ा,
वही हाथ मशाल पकड़ते हैं।
घृणा , प्रेम सब मनोभाव हैं,
भाव ही सोच जकड़ते हैं।
दो अतियों के मध्य में,
एक राह चुनिन्दा लोगों की,
वही लोग निज सोच में तपकर
अन्याय संग लड़ते हैं।

धीर, धैर्य दर्द में पलते,
मानव रखना याद सदा।
इतनी पीर वेदना मिलती,
किसी-किसी को यदा- कदा।
रह अभाव में कुछ जन बनते
जग की सुविधाओं का स्रोत।
अचरज भरी क्रिया करता जो
दिवस चला और रात जगा।

वैतरणी खंगाल, जो ढूँढे,
फेंक दिए सब सीपें मोती।
पीर पराई मुकुट शीश पर,
सम्वेदना शूल पिरोती।
अब न कोई निजी लक्ष्य,
जनहित, परहित एक चुनौती।
थके नहीं पग, अन्तहीन पथ,
इस पथ मृत्यु कभी न होती।

खण्ड-5

इस पथ पर था सृजन खड़ा,
एक नयी सृष्टि बनकर।
इस पथ पर थी खिली आशाऐं,
एक नई दृष्टि बनकर।
इस पथ पर सीमा न बन्धन,
यहाँ स्वतंत्र सोच चले।
इस पथ बिरले पथिक वीर हैं,
इस पथ सजनी संग चले।

आसन और सिहांसन के बिन,
बिन प्रशंसा , बिन पुरस्कार।
जिस मस्तिष्क में प्रकट हुई,
वह शीश कटाने को तैयार।
जब सजनी गुण, जीव में उभरै,
अवगुण घटते जाते हैं।
पीढ़ी दर पीढ़ी सजनी से
मानवता पाती विस्तार।

पग से धरती नापे, कर से
देती शिखरों को आकार।
खींच रही पौरूष बन चप्पू ,
लग जाती नौकाऐं पार।
सदा खड़ी निर्बल के अंग संग,
प्रश्न करे व्यवस्था पर।
कभी झोंपड़ी में गरजे,
कभी खेतों पर माँगे अधिकार।

नींव और आधार न बदला,
हर युग में लगी नई-नई।
पात्र, सूत्रधार बदल गए,
किन्तु मूल चरित्र वही।
नए नए पथ , पथिक , लक्ष्य
किन्तु अटल रही सजनी।
परिवर्तित दीये , तेल, बातियाँ
पर प्रचण्ड वही अग्नि।

सजनी ईश्वरवादी चोला,
पहन कभी न बनी आस्तिक।
और अनीश्वरवादी बन कर
सर्व स्म्मुख न बनी नास्तिक।
इन दोनो अतियों के मध्य
कठिन डगर जिज्ञासा की,
उस भूमि पर पाँव जमाकर
बन कर रही सदा वास्तविक।

हृदय स्वार्थ गीत न गूँजे,
बजे सर्वहितकारी धुन।
शोक स्वर नहीं मातम के,
किसी बच्चे की किलकारी सुन।
कड़वा स्वाद खत्म करना तो
मृदु नहीं, जल खारी चुन।
चलो निरन्तर समता पथ पर,
ज्येष्ठ, आषाढ़, या हो फागुन।

सजनी समय से भी पुरातन,
किन्तु हर पल नई कथा।
प्रमाणित सिद्धांत सच का,
कोई रीत न कोई प्रथा।
शब्द मिले बन जाती गाथा,
स्वर संगीत मिले तो गीत।
बिन बल, छल, अस्त्र, शस्त्र के
रण जीतने, बने सखा।

सजनी मेरा सामाजिक चिन्तन,
सजनी मन की सजगता।
सजनी समरसता, समभाव,
सजनी मेरी सज्जनता।
वैर, विरोध, विकार मिटाये,
एक निरन्तर जप, सजनी।
परोपकार को करे प्रेरित,
कर्म-योग सा तप सजनी।

कोई कह रहा मन्दिर, मस्जिद,
गिरजा, गुरूघर, सत्संग में आ।
कोई कह रहा गुरू धारण कर,
नाम जप और मुक्ति पा।
पर मैं पथिक सत्य के पथ का,
तेरी शरण में आया सजनी।
अमृत में परिवर्तित करने,
घट में विष भर लाया सजनी।

यह विष मेरी मनोकामना,
सबसे ऊँचा उठ जाने की।
यह विष मेरी निजी लालसा,
धन, शासन, सत्ता पाने की।
यह विष मेरा अति स्वार्थ,
सब सुन्दर रस पी लूँ मैं।
यह विष अमरत्व की इच्छा,
कि मृत्यु बाद भी जी लूँ मैं।

मैं और तुम यहीं से आये,
विष भी इसी धरा से आया।
यहीं घटी यह अद्‌भुत घटना,
एक दूजे को हमने पाया।
यह मिलन है तभी सार्थक,
सबकी राह में फूल बिछाऊँ,
मृत्यु शैय्या पर तेरे संग,
जीवन का त्यौहार मनाऊँ।

किन्तु, केवल मेरी दशा ही,
बदलोगी तो कुछ न होगा।
परिस्थिति से आँख मून्दकर,
सम्भलोगी तो कुछ न होगा।
इस दुनिया को बिना बदले,
नहीं सम्पूर्ण कोई परिवर्तन।
इसकी गति चले जन मानस,
चेतन मानव का अन्तर्मन।

सजनी यह जग शिक्षक जैसा,
सबको जीवन सीख सिखाऐ।
बिन समाज न कवि बने,
न ही कोई कविता बन पाए।
इसकी सारी क, ख, ग से
तुझको अवगत करवाता हूँ।
बनते टूटते अनुबन्धों से,
तेरा परिचय करवाता हूँ।

हर युग की हर पुस्तक में,
नई परिभाषा इसने पाई।
कोई कहता यही सत्य है,
कोई कहे सच की परछाई।
कई तर्कों के रचे स्वंयवर,
सब समझे मेरा भारी पाला।
अबूझ पहेली अबूझ रही,
न पहन सका कोई वरमाला।

आज, अभी और इसी क्षण,
हम-तुम अपना फर्ज़ निभायें।
सामाजिक उन्नति की राह में,
दोनो योगदान कुछ पायें।
अपनी भूमिका निर्वाह करने,
रंगमंच पर जगह बना लो।
मैं भी विश्लेषण करता हूँ,
एक दृष्टि तुम भी डालो।

देख उजाला ख़ुश न होना,
अन्धकार से न डरना तुम।
अर्थों के घोर अनर्थों पर,
चोट तर्क की करना तुम।
एक ज़िन्दगी फेरे चरखी,
एक ज़िन्दगी फ़िरती जाती।
उलटी-सुलटी जल लहरी पर,
जीवन नैय्या तिरती जाती।

कोरी कल्पनाओं के दम पर,
जीवन नहीं जिआ जाए।
सोच सार्थक बने तभी,
जब कर से कर्म किया जाए।
उड़कर ही पक्षी ने जाना,
न बने घरौंदा तारों पर।
लहरों पर नौका चलती है,
बसते हैं नगर किनारों पर।

निज मन आग लगा सबका,
पथ उजियारा कर सजनी।
लक्ष्य भेदना सम्भव है,
चलने का धैर्य रख सजनी।
उनका हाथ पकड़ना जो,
भीख माँग सहारा ढूँढ रहे।
पथराई आँखों से सब में,
रूठा रब्ब प्यारा ढूँढ रहे।

जो झूठ बोल बलवान बनें,
धोखे से धनवान बनें।
स्वर्गलोक के स्वप्न दिखाकर,
लोगों के भगवान बनें।
लोक-कचहरी में दृढ़ होकर,
उन पर प्रश्न उठाओ तुम।
धर्म सभा में न्याय ख़ातिर,
यम से आँख मिलाओ तुम।

पर पीड़ा हरने का प्रण लो,
संकल्प दिशा में अटल बनो।
दृष्टि गाड़ मीन चक्षु पर,
साध लक्ष्य सफ़ल बनो।
निज मोक्ष के प्रयासों में,
समय व्यर्थ गुज़र जायेगा।
सबका लोक सुधार प्रिय,
तेरा परलोक सुधर जायेगा।

सदा अकेली नहीं रहोगी,
लोग तुम्हें भी चाहेंगे।
जो सत्य के खोजी हैं,
वे तुम्हें ढूँढते आयेंगें।
मुंह से चाहे न बोलें पर,
मन में सोच विचार करेंगें।
उनकी संख्या कम होगी पर
दिल से तुझको प्यार करेंगें।

जग सारा कुछ समय बाद,
तेरे जैसा हो जायेगा।
उस पल को मैं नमन करूँ,
जिस पल ऐसा हो जायेगा।
इसी तरह यह दुनिया बदले,
इसी तरह होती है प्रगति।
ऐसे ही नई राहें बनती,
ऐसे ही जय होती सच की।

निस्वार्थ से सत्य पनपे,
सत्य से निष्कपट अभय नर।
ऐसे नर का निर्मल मन ही
बन जाता सजनी का घर।
सच के कड़वे स्वाद से सीखे
तर्कों के प्रहार प्रखर।
करे न्यौछावर सब कुछ सच पर
तब कहलाती अजर, अमर।

निष्पक्ष नहीं, अब किसी पक्ष का,
तुम्हें घटक होना होगा।
अब सारी सीमाएँ लाँघ कर
तुम्हें प्रकट होना होगा।
काल गति के अवरोधक
सब बार-बार तुम्हें मारेंगे,
बार-बार पैदा होने को
बीजरक्त होना होगा।

नहीं तो तेरे कविता होने
का कुछ अर्थ नहीं होगा।
विष पी, अमृत बनने में,
कोई और समर्थ नहीं होगा।
गर्व से सीना तान लेखनी
बोले, कविता कालजयी।
हर अक्षर बने स्नेह चिन्ह,
कोई शब्द व्यर्थ नहीं होगा।

आडम्बर, पाखण्ड के बिना
सीधे कदम बढ़ाते हैं।
समक्ष यथार्थ, तर्कशील बन,
प्रश्न गम्भीर उठाते हैं।
जिस समाज में मानव अब तक
मानव को अपना न सका,
उस समाज में पेड़, पशु ,
पत्थर क्यों पूजे जाते हैं?

कोई कहता स्वंय को बदलो,
कोई कहे बदलो समाज।
जड़ व चेतन दो हिस्सों में
बँटा सम्पूर्ण दर्शन आज।
एक ही सिक्के के दो पहलु
दोनो से है पूर्णता,
यही रहस्य समझ सकें सब
सजनी सबको दो आवाज़।

खण्ड–6

शीश झुकाकर खड़ा पुण्य,
पाप दिखाए प्रतिष्ठा।
पाखण्डी करे घोर आडम्बर,
मौन खड़ी सत्यनिष्ठा।
चतुर व्यापारी खोल दुकानें,
भय और भ्रान्ति बेच रहे।
कुछ जन क्रान्ति बेच रहे,
कुछ मन की शान्ति बेच रहे।

निर्बल और दुर्बल पिसते हैं,
कर कर्म, बली को पाल रहे।
कुछ राजसत्ता के चाटुकार,
बिन श्रम हो माला माल रहे।
कई भविष्य वक्ता बन कर,
भाग्य भेद समझाते हैं।
दिशाहीन कर मानव को,
नवग्रह की दशा बताते हैं।

कुछ लोगो के लालच कारण,
सब के मन पीड़ित तन दूषित।
कुछ लोगो के स्वार्थ कारण,
पृथ्वी, वायु, जल प्रदूषित।
अन्धविश्वासी, कर्मकाण्ड,
सत्कर्म समझ कर करते हैं।
करते हैं पशुओं की पूजा,
मानव को नीच समझते हैं।

नदियाँ बान्धी, जंगल काटे,
किया अवैध खनन धरती का।
करे समाप्त भू से जीवन,
कैसा रास्ता यह प्रगति का?
हथियारों का भण्डारण कर,
नाम ले रहे उन्नति का।
युद्धों ने इतिहास लिखा है,
सदा विश्व का अवनति का।

घटते-बढ़ते तेल मूल्य पर,
निर्भर सबकी जीवन शैली।
पेट-पीठ मिल एक हो गये,
और हो गई नीयत मैली।
अजब अनूठे इस तंत्र में,
जन्म ले रहे ओछे मन।
विदेशी मुद्रा पाने के लिए,
अन्न बेचते भूखे तन।

संकल्प सिद्धान्तों का लेने को,
कितने दिवस मनाते लोग।
स्माधियों पर पुष्प चढ़ाकर,
फूले नहीं समाते लोग।
दरबारों की चाटुकारिता,
दर्शन बन गया जीवन का।
सजनी केवल दल बदल कर,
प्रगतिशील कहाते लोग।

राजनीतिज्ञ, अन्याय का,
न्यायोचित, करें प्रसार।
भावुक भाषण दे सबको,
त्याग के लिए करें तैयार।
जनतंत्र का जंतर -मंतर,
जन सेवा विकास का नारा।
सत्ता के गलियारों में फिरे,
आम आदमी मारा - मारा।

भटकाने वालों से मानुष,
घर का पता पूछता है।
दूजे के प्रश्नों में अपने,
प्रश्नों के उत्तर ढूँढता है।
सम्पूर्णता की चाहत में,
जो मिला उसे भी खो बैठा।
नभ को पाने के लालच में,
हाथ धरा से धो बैठा।

अन्धेरे से डरा मनुष्य,
नहीं जानता, हो गयी भोर।
परछाई से शरण मांगता,
किए पीठ सूरज की ओर।
कर्तव्यों से विमुख होकर,
भूल गया अपनी पहचान।
मन में, मानव मिला नहीं,
पत्थर में ढूँढ रहा भगवान।

लाखों किस्से और कथाएं,
लिखे गए और पढ़े गए।
कितने तपी वनों में भटके,
और कितने युद्ध लड़े गए।
सत्संग, पूजा, यज्ञ, साधना,
करते-करते बीत गये युग।
ऊँच-नीच का भेद न मिटा,
और न मिटा 'मैं' से युद्ध।

ब्रह्माण्ड बदल सकते थे जो,
उन्हें कौन रेगंना सिखा गया?
उनका कोई इतिहास नहीं,
न उन पर कुछ लिखा गया।
करूँ प्रश्न किस नायक से?
कैसे कुछ जन शुद्ध बनें?
कैसे कोटि - कोटि जन,
शुद्धों के लिए अशुद्ध बनें?

इस गोरख-धन्धे का गणित,
हर युग में मैंने झेला है।
खेल समझ कुछ लोगों ने,
इसे जान-बूझ कर खेला है।
दरबारी - यशगान हुआ,
अपयश मानव के तन-मन का।
हुआ मृत्यु का पूजन और,
घोर निरादर जीवन का।

पहले निर्मित सीमाओं में,
न मानव का अहम समाये।
सत्ता और शासन की लालसा
शस्त्र-बद्ध युद्ध भड़काऐ।
ध्वनि गति से तेज दौड़ती
मृत्यु घूमे अम्बर में,
राहत शिविर में मृत बच्चे को
घायल ममता चूम जगाऐ।

कहने को मानव प्रगति की
सारे सौरमण्डल पर छाप।
मुट्ठी भर वरदान भोगते,
बहुजन के हिस्से अभिषाप।
वायु रही न श्वास योग्य
जीवन हेतु जल बना विष,
खेतों में उगे मृत भविष्य
भोग रहा बचपन सन्ताप।

निर्धन के लिए रोटी कपड़ा
और मकान की थोड़ लगी।
इस दुनिया में श्रम के लूट की
धनवानों में दौड़ लगी।
श्रमिक चेतना, सजग एकता
से पृथ्वी बच सकती है,
सकल महा जल पी जाने की
कुछ लोगों में होड़ लगी।

सच की तुला में तोला जाए,
मानव का व्यव्हार व ज्ञान।
प्रतिष्ठा, आचरण आधारित,
जन्म जात न मिले सम्मान।
चाँद पे जाना भी आवश्यक
किन्तु पहले भूमि पर,
करो समाप्त शोषण और दो
सबको अन्न , छत, परिधान।

दिन रात भर चलें मशीनें
भण्डारण उत्पादन का।
खाली पेट , पीठ सहलाऐं
घाव भरें, भूखे तन का।
सम्पन्न राष्ट्र लूट ले गये
सर्व संसाधन सृष्टि के,
धर्मो के लिए, पुण्य कथा है
क्रन्दन सूने आँगन का।

अश्रु लेकर खड़ी भुखमरी,
प्रदूषण , लेकर दुर्गन्ध।
धनी कर रहे मानवता के
मरने का पूर्ण प्रबन्ध।
रंग, लिंग , जाति, भाषा के
कान्धे पर खड़ी राजनीति।
शोषण के नवरूप खोजते
उत्पादन-बाज़ार, सम्बन्ध।

शस्त्र होड़ ने किये समाप्त
देशों के मध्य सम्वाद।
जितनी भयावह अन्ध आस्था
उतना ही अन्ध राष्ट्रवाद।
उन्नीस सौ छयालीस से रोती
विश्व चेतना भटक रही,
अब तक जीवन भूल न सका
परमाणु बम सा अपराध।

नभ से मौत की बारिश करके,
कृत्रिम प्रलय निकल गई।
भू पर क्षण में जीवन रूपी
रेत हाथ से फ़िसल गई।
माँ के वक्षस्थल से लिपटे
शिशुओं की देह पिघल गई।
कौन गिने? वैज्ञानिक उन्नति,
कितने मानव निग़ल गई।

तत्व को क्रियाहीन मानकर
ढूँढे काल्पनिक कर्त्ता।
सत्यशोधक का वध करने,
फिरें असत्य के धर्ता।
भू, नभ पर अधिकार जमाऐं
जिनके अन्तर्मन व्याधि,
देख-देख अपराधी हँसता
सच के संग न्याय मरता।

देवलोक के सन्देशों की,
हाथ-पाँव में बन्धी जंजीरें।
धनी रंक की गहरी खाई,
भू पर खींचे और लकीरें।
आधुनिक सभ्यता की परिभाषा,
मौन सामाजिक विषयों पर,
सामाचार-पत्र बिकने को
ढूँढें आकर्षक तस्वीरें।

सकल भू , वायु, सागर तक
पक्षपात पूर्ण व्यवस्था।
शिक्षा, चिकित्सा, न्याय महँगा,
केवल मानव का श्रम सस्ता।
करते सम्पन्न देश, आर्थिक
शोषण तीसरी दुनिया का।
संयुक्त राष्ट्र सघं कहाऐ
निष्पक्ष अन्तर्राष्ट्रीय सस्ंथा।

सम्पन्नता की भूख से लदे,
पश्चिम से निकले कुछ पोत।
मानव , देश , बने परतन्त्र
जो न झुके उन्हें मिली मौत।
एक योजनाबद्ध षडयन्त्र,
युद्ध, व्यवसाय संग चला।
हाथ थमादी धर्म पुस्तकें
लूट लिए प्राकृतिक स्रोत।

साधन सम्पन की चतुराई
आज भी दक्षिण झेल रहा।
ढीली , कसी डोरियों संग
चल, कठपुतली का खेल रहा।
यह आतंक का दुष्प्रचार तो
केवल एक बहाना है,
सोच, हड़पना वह भूमि,
जहाँ निकल रेत से तेल रहा।

सजनी, गहन अध्ययन माँगती
सच्चे विश्व घटना क्रम की।
वैज्ञानिक सोच से ही मिट पाए
स्थिति असमंजस व भ्रम की।
सारे युद्‌ध मानव जीवन में,
अंधकार फैलाते हैं।
केवल एक लडाई सत्य,
पूँजी व मानव श्रम की।

वर्तमान का यही महारण
कविता तेरी यही लड़ाई।
भुगतेगा परिणाम यथार्थ
आज जो तुमने पीठ दिखाई।
जनवाद के न्यायालय में,
समय कटघरा लिए खड़ा।
पृष्ठ, लेखनी और भविष्य
देंगे तेरे पक्ष गवाही।

नई लकीरें मत खींचो
हर सीमा पर प्रीत लिखो।
सम्पूर्ण मानव जाति हेतु
अब कोई साँझा गीत लिखो।
न बात करो भ्रम व भय की
न महिमा मण्डित हो मृत्यु,
विश्वतंत्र के वक्ष स्थल पर
मानव श्रम की जीत लिखो।

कोई राष्ट्र बड़ा न छोटा,
न कोई अग्रज न ही अनुज।
पृथ्वी के ससांधन सबके,
सबकी वायु, जल व रज।
किरत करो, बाँटो और भोगो,
यही विश्व का दर्शन हो।
सर्वमान्य विश्व व्यवस्था,
छः द्वीपों का साँझा ध्वज।

तभी मिटेगी भूख जगत से,
सारा जग होगा प्रबुद्ध।
किसी देश की सीमा न हो,
कौन करेगा? किससे युद्ध?
सबके साँझे स्रोत धरा के,
सबकी उन्नति एक समान।
जगती से मिटे नस्ल भेद,
फ़िर किसका लहू? किससे शुद्ध?

खण्ड–7

कुछ पल रोकें विश्व की चर्चा,
अपने देश की बात करें।
पुण्य के दर्शन संग पाप में,
समावेश की बात करें।
कृषकों और श्रमिकों के
साधारण जीवन को परखें,
भवनों में आनन्द भोगते,
जन विशेष की बात करें।

सप्त सिन्धु बना भारत कैसे?
यह भी कथा अनोखी है।
ऊँच-नीच की वर्ण प्रथा,
मानव से पावन पोथी है।
जहाँ निठल्ले बने स्वामी
परिश्रमी कहलाऐ दास,
इस तन्त्र के मूल का वर्णन
सबसे कठिन चुनौती है।

पत्थर, नदियों, वृक्षों के संग
पशु , पक्षियों का पूजन।
दूर नगर से ढेर गन्दगी,
उस पर बैठे शूद्र जन।
भूखे नंगे और दरिद्र
मेहनत ही जिनका अपराध,
सज्जनता को रहे सींचते
फिर भी कहलाऐ दुर्जन।

उच्च वर्ण की सम्पन्नता से
भरे ऐतिहासिक अध्याय।
उनका नहीं उल्लेख जिन्होंने
सहा सामन्ती अन्याय।
नींव सामाजिक प्रगति के
पर सदा दीनता ही भोगी,
आज भी समता के अभाव में
खड़े हाशिये पर असहाय।

कहीं आतंक के साये में,
घुट-घुट मरते जीते लोग।
धर्मान्धता, भय, अभाव में,
अपने आँसू पीते लोग।
कोई कहे व्यवस्था दोषी है,
कोई कहे धरा पर पाप बढ़ा।
हवा सदा उसने बदली जो,
खुद से लड़ा, जग से भी लड़ा।

साधु-जन ऊँचे आसन चढ़,
झूठ परोसते लोगों को।
सबसे कहते जग सपना,
और स्वंय भोगते भोगों को।
मुनि, महात्मा, सन्त वही,
जो आमजन से प्यार करे।
जनमानस सा बना रहे,
जनमानस का सत्कार करे।

अभिमन्यू सा फँसा मनुष्य,
रचा स्वार्थ ने चक्र व्यूह।
रंग , लिंग और धर्म आधारित
लाखों संघ व लाखों समूह।
शूल मुकुट और अग्नि आसन
निस्वार्थ पथ न कोई सखा।
समस्त विश्व की एकता में
छुपी सजनी तेरी सम्पूर्णता।

दब जाती जन की आवाज़।
नियमों और विधानों में,
मरें भूख से लोग यहाँ,
वहाँ सड़े अनाज गोदामों में।
सजनी इसके उत्तरदायी,
सिहांसन और ताज बदल।
टुकड़ों में जीवन जीने का,
चिन्तन बदल , समाज बदल।

श्राप ग्रसित आधी दुनिया
भ्रूण वध, कहीं बलात्कार।
कहीं दहेज की अग्नि में,
जलती नारी का चीत्कार।
ऐसे में क्यों लिखूँ गीत?
परियों का और सरोवर का।
सम्मान दाव पर लगा मेरी,
जननी का और धरोहर का।

भव सागर संगम द्वन्दों का,
अच्छे और बुरे सम्बन्धों का।
कुछ सबको ढोते फ़िरते हैं,
कुछ बोझ बेगाने कन्धों का ।
ऊँचे पद की चाहत में,
कुछ नज़रों से गिर जाते हैं,
स्वाभिमान बचाने को,
कुछ ख़तरों से भिड़ जाते हैं।

कई मठाधीश, कई महर्षि,
कई महामुनि, कई अवतारी।
कुछ खींच गये, कुछ खींच रहे,
निज दुनियादारी की गाड़ी।
करे हौंसला बिरला ही,
दूजे के आँसू पीने का।
मरने की कई राहें केवल,
यही रास्ता जीने का।

सच पर टिकते विद्याव्रती,
न मानवता अपमानित होती।
बहुजन तटस्थ न रहता ,
तब यह विकट स्थिति न होती।
उपदेशों और प्रवचनों ने,
बहुत बन्धाई झूठी आस।
अब काल-पटल पर तर्कों के,
प्रहार लिखेंगे नव इतिहास।

कर्म से मानव हुआ सामाजिक,
तब पशुओं से भिन्न हुआ।
आदि के सभ्य होने तक,
परिवर्तन अविछिन्न हुआ।
ऊँच-नीच का भेद कर्म में,
बना स्वार्थ के कारण।
निराधार से इस विचार को,
कभी न कर पाया मैं धारण।

भूत काल से सबक न लेगा,
वर्तमान में यदि समाज।
भविष्य में फ़िर कौन कहेगा?
आने वाले कल को आज।
लिए रेवड़ी हाथ में अन्धा,
अपनों को ही बाँटेगा।
यूं बीज अन्धेरे के बो कर,
भला कौन रौशनी काटेगा?

राजपक्ष में नियम बनाकर,
भावुक करके जिसको लूटा।
गुरू-दक्षिणा की आड़ में,
जिसका मांगा गया अंगूठा।
वह महाहठी, महारथियों को,
युद्ध में फ़िर ललकार रहा।
अब पक्षपात न हो सजनी,
एकलव्य तुझे पुकार रहा।

स्वार्थ गढ़े सिद्धान्त काल्पनिक,
फैलाऐ जन मे भटकाव।
भटकाव से अन्ध आस्था,
अन्ध आस्था से टकराव।
टकराव से क्षीण चेतना,
मानव को दे गहरे घाव।
सजनी कहती इन सबका हल,
निस्वार्थ, समता, समभाव।

शब्दों को तर्कों में बुनकर,
योद्धाओं सी डटी हुई।
देखे सजनी, मानव जाति,
कई हिस्सों में बंटी हुई।
लाख लकीरें काल खींच गया,
बोटी-बोटी मानवता।
करे न कुछ, नर पढ़े पंक्तियाँ
जो पोथी से रटी हुई।

गाँव , शहर, जनमानस कविता
खड़ा तेरी प्रतीक्षा में।
दाव लगादो जीवन का
हो जाओ सफ़ल परीक्षा में।
सीखा नहीं यह तर्कशास्त्र
तुमने किसी मूर्ति से।
उन्हें अँगूठा दिखलाना
यदि माँगे कोई दीक्षा में।

जाति , धर्म , क्षेत्र , भाषा
खींचें पृथ्वी पर रेखाऐं।
अपने अपने जयघोषों से
निज दल बल का भय फैलाऐं।
सूर्य मारकर वे चाहते हैं
अन्धेरों पर अधिपत्य।
कुछ जन खड़े प्रेम लौ लेकर,
रेखाऐं न जल पाऐं।

शोषक, शोषित से ही अपनी,
जय, बल से बुलवाता है।
पूर्व जन्म कर्म फल भोगी
हम हैं, हमें सिखाता है।
यज्ञ में लकड़ी संग जलता
अन्न गवाही देता है,
यहाँ रंक के श्रम की लूट को
पुण्य माना जाता है।

अब कोई कुण्ठित राजगुरू
न माँगे दीक्षा बिना सिखाऐ।
शिक्षक और शिष्य का नाता
अपमानित न होने पाऐ।
देव प्रकट होते हैं केवल,
राजबहू की रक्षा को।
शूद्र की रक्षा कर सजनी
कैसे कोई अवतार कहाऐ?

भूमि पर मानव भटकाया,
नभ की राह बताती है।
तर्क़हीन सी दन्त कहानी,
संस्कृति बन जाती है।
निज शोषण पर उठे अंगुली
धर्म विमुखता का अपराध,
निर्धनता पर प्रश्न उठाना
ईश निंदा कहलाती है।

सारे नियम सिद्धांत समाप्त,
जय-जय कार सिर्फ़ धन की।
यम के हाथ में बागडोर है,
कहते हैं, जनजीवन की।
सजनी नव तन्त्र ध्वज वाहक,
आस जगाओ जन जन की।
धर्मों के प्रचारक कर रहे
धार कुन्द परिवर्तन की।

आध-अधूरा जीवन जीते
मस्ती में मतवाले लोग।
सुर्ख स्वर की धुन भूल गए,
नीले साजों वाले लोग।
कुटी जली विद्रोह चिगांरी
जाकर छुपी हाशिये पर,
मुट्ठी में सच लिए घूमते
वन में फिरते काले लोग।

समय आ चुका अब यथार्थ
और विज्ञान की बात करो।
न भगवानों, न शैतानों
अब इन्सान की बात करो।
सभ्यता बन चुकी आंदोलन,
देती है अधिकार तुम्हें,
अच्छी फ़सलों, अच्छी नस्लों,
संविधान की बात करो।

घोर तमस में जग रहता
कुछ हिस्सों में उजियारा है।
जुगनू बन उम्मीद़ जगा,
जिस बस्ती में अन्धियारा है।
हाशिये पर नव पौध उगी,
अचरज में मुख्य धारा है।
वे नाम कभी न सुने गए,
सजनी ने जिन्हें पुकारा है।

देख के कविता भी अचंभित,
अति विचित्र व्यथा तेरी।
श्रम , तेरा ही वर्णन करती
अचरज भरी कथा मेरी।
हर अक्षर हर घटनाक्रम में
तेरे ही जीवन के रंग,
उसने पक्ष नहीं बदला,
थी तेरी तथा यथा तेरी।

खण्ड–8

लाख बुराइयाँ जग मे सजनी,
फ़िर भी जग न छोड़ा जाए।
कुछ करने की ठान चुका मन,
अब संकल्प न तोड़ा जाए।
सद्नीयत, सत्कर्म से बड़ा,
न कोई मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र।
वहीं बसेरा परम ब्रह्म का,
जो मन स्वार्थ से स्वतन्त्र।

हर कदम, सोच व हस्त कर्म,
श्वास भी पर हितार्थ हो।
बने साक्षी जब मृत्यु तो,
यह जीवन कृतार्थ हो।
समता के लिये यदि युद्ध हो
तो मिटना भी पड़ता है,
निज स्वार्थ से सदा लड़ो
पर झुको, जहाँ परमार्थ हो।

स्वार्थ से हो पैदा लालच,
लालच है सत्ता का मूल।
सत्ता से शोषण आरम्भ,
शोषण मानवता प्रतिकूल।
मानवता के बिना यह धरती
जीव रहित एक अण्ड-पिण्ड है,
जिसमें फूल नहीं खिल सकते
चहुँ दिशा मे केवल धूल।

लक्ष्यहीन सब दौड़ रहे,
एक दूजे को करते पीछे।
ऊँचेपन की लोलुपता में,
गिरा आदमी कितना नीचे।
मैं ऊँचा, मेरी जाति ऊँची,
मेरी भाषा, मेरा धर्म बड़ा।
अहम घमण्डी यह न जाने
झुक कर होता कर्म बड़ा।

बादल बनकर, झुका नीलाम्बर,
धरती पर बरसात हुई।
झुका सूर्य किरणें बन कर,
जग जागा प्रभात हुई।
मिट्टी मे जा मिला बीज,
दे पाया फ़सल हजार गुनी।
पाँव में घुंघरू बन्धा तभी,
इस दुनिया ने झन्कार सुनी।

सदा समर्थन सच का करना,
जीना एक कसौटी बनकर।
मानवता के अंग–संग रहना,
साथी और चुनौती बन कर।
विजयश्री के दो ही लक्ष्ण,
दृढ़निश्चय और इच्छाशक्ति।
महाप्रलय के बाद अकेला,
मानव खोज कर लाया धरती।

नवराही चले सदैव अकेला,
मन में नहीं निराशा हो।
जिन्हें भीड़ भोगने की आदत,
उनसे न साथ की आशा हो।
निज खेत सींचती धारा को,
भला कौन मोड़ना चाहेगा?
वह स्वंय सदा ही टूटेगा,
जो सबको जोड़ना चाहेगा।

जब प्यार में कैस बना मजनूं,
लोगों के पत्थर पड़ते हैं।
जब भीड़ गवाही देती है,
तब यीशू सूली चढ़ते हैं।
सच्ची बात बताने पर
सुकरात को मारा जाता है।
गाड़ी से धक्के दे करके,
गान्धी को उतारा जाता है।

जिसने संसार से प्रश्न किया,
सन्ताप मिला, प्रताप नहीं।
कुछ लड़ने वाले लड़ते हैं,
जग बदले अपने –आप नहीं।
कब उन्हें समर्थन मिल पाया?
विद्रोह का बिगुल बजाते जो।
सजनी इतिहास बताता है,
मरने पर पूजे जाते वो।

बदल पाओगी दुनिया को,
स्वंय बदलना सीखो तुम।
सम्भाल पाओगी प्रतिनिधित्व,
स्वंय सम्भलना सीखो तुम।
एक दिन गिन नहीं पाओगी,
तेरे कितने चाहवान हुए।
सत्य सामने नतमस्तक,
बड़े-बड़े तूफ़ान हुए।

सच की कोई नहीं परम्परा,
सच का कोई नहीं विधान।
न मौखिक न लिखित टिप्पणी,
सच न निन्दा, न गुणवान।
सच मन की स्वतन्त्र चेतना,
सच तन में दौड़े बन प्राण।
सच है एक निरन्तर खोज,
सच यथार्थ का प्रमाण।

सजनी, विजयी वही कहलाया,
जो निज टूटन सह पाया।
आँखें मूँदे जिससे दुनिया,
वह सच जग से कह पाया।
हित त्यागा, पर हित जागा,
वेग विरुद्ध बह पाया।
वीरगति थी खड़ी सामने,
पर वह चुप न रह पाया।

सजनी, मत होना अधीर,
कोशिश से हल निकलते हैं।
गतिहीन तालाबों को नहीं
कभी समन्दर मिलते हैं।
मन्थन से विष निकलेगा,
तो कोई महेश्वर भी होगा।
यदि आज विध्वसंक है,
कल सृजनेश्वर भी होगा।

करो कोई प्रयास सार्थक,
भू पर मानव एक हो जाऐं।
सर्व सम्पूर्ण विश्व एक कर
ध्वस्त करो सारी सीमाऐं।
मानव प्रगति और सभ्यता
टुकड़े टुकड़े बिख़री है,
पकड़ो हाथ चलो सगं मेरे
हारी बाज़ी, जीत के लाऐं।

न भक्ति, न शक्ति की
यह मधुर कथा अभिव्यक्ति की।
जो खड़ा दूर सिहांसन से,
उस साधनहीन व्यक्ति की।
जिसका तन , मन परतन्त्र
रहा जकड़ा सदा जर्जीरों से,
उसी से भिक्षा ली कविता ने,
स्वार्थहीन विरक्ति की।

सहस्रों कवि लेखकों ने
लिया पक्ष सदा सरकारों का।
राज सिहांसन पूजे गये
गुणगान हुआ दरबारों का।
अति निरकुंश व्यवस्थाऐं
रहीं कुचलती जन भावना,
जिसे बताती रही पुस्तकें
धर्म-कर्म अवतारों का।

तुम्हें देख कर जगी उम्मीदें
आस बन्धी बेहतर कल की।
अम्बर ने हामी भर दी
तैयारी देख धरातल की।
बहरी सत्ता साफ़ सुने
मिल रहा समर्थन कविता को,
पथ पर दौड़े भीड़ , संसद को
मिले सूचना पल-पल की।

तुमसे सत्ता भयभीत है,
सजनी तुझको समझाये।
तेरा श्रम ही चेतन अमृत,
तू जगे, सृष्टि जग जाये।
वर्तमान के कुरूक्षेत्र,
दो द्वन्द मुकाबिल खड़े हुए,
जीवन को यदि जीत मिले तो
जग परिवर्तित हो जाये।

मनुष्य के कर्तव्य-बोध का
जन जन को आभास कराओ।
भेद भाव से मुक्त हो जगती,
एक नया अभियान चलाओ।
अन्तर्यामी अवतारों की,
नहीं जरूरत मानव को।
सत्य के निस्वार्थ प्रेमी,
करो एकत्रित, सघं बनाओ।

ऐसा सघं जो इतिहास में
नव पृष्ठों को जोड़ सके।
जिसमें बन्द आवाज़ सच की
वे दीवारें तोड़ सके।
चमत्कारों की नीवं में छुपे
नियम वैज्ञानिक अपना कर,
झूटों के मुहं से विषधारा
निकल रही, उसे मोड़ सके।

समता और समभाव आधारित
यह धरती बने ऐसा धाम,
ईसा, मूसा, नानक व नबी
महावीर, बुद्ध संग श्री राम।
तुझमें है यह शक्ति सजनी
तुझमें ही यह सामर्थ्य,
निस्वार्थ है तेरी भावना
निष्कलंक है तेरे काम।

धन, बल प्रसिद्धि, देगें पर
भवनों में मत जाना तुम।
जहाँ रंक की मिले झोंपड़ी,
अपनी रात बिताना तुम।
धर्म-स्थल और तीर्थ-स्थल
उच्च स्वर तुम्हें लुभायेंगें,
कथा चुप की, मर्म दर्द का
शोषित को समझाना तुम।

पूर्वजन्म कर्म फल, भूख है,
भूखे को बतलाये जो,
ऐसा मत फैलाने वाले
दर्शन से कर दो विद्रोह।
सड़ा-गला सदियों का पाखण्ड
संस्कार बना वर्तमान का,
ऐसी नीच सोच को सजनी
खुलकर आज चुनौती दो।

सजनी, तेरे हर अक्षर की,
समय, तेज कर धार रहा।
जम्बू द्वीप के हर कोने से,
तुझको युद्ध पुकार रहा।
पिछले पृष्ठों पर ही छूटे
प्रेम, स्नेह, विश्राम तेरे,
अब हर पन्ना तेरे लिए
कर रण भूमि तैयार रहा।

बढ़ जाना मत पीछे लौटना
पथ पर मौत विचरती देख।
बुद्धत्व पा , निज विराट में
जगती मिटती, बढ़ती देख।
नीलाम्बर में उड़ते पक्षी
देते हैं आवाज़ तुम्हें,
हाथ पकड़ सजनी का उड़,
एक बार गगन से धरती देख।

मानव मन से बहुत दूर है
ब्रह्माण्ड का अंतिम छोर।
कहीं-कहीं जुगनू , चिगांरी,
बाकी जगह अंधेरा घोर।
तपती धरती से ज्योति
लेकर बन विशाल, मशाल
उसे पकड़ कर, अंत तमस का
तब हर घर आऐ नव भोर।

तेरे पास है शब्द मुखरता
स्वर अक्षर की शक्ति हो।
तेरे पास प्रयास कवि का,
निस्वार्थ अनासक्ति हो।
भीड़ को पंक्तिबद्ध करने की
सीखी कला एकान्तों से,
तुम हर युग की मौन साक्षी
और महा अभिव्यक्ति हो।

आदि मानव वन-वन भटका,
संग चली जिज्ञासा बन कर।
जिस युग खेत में बैल चले
तुम आई बनकर हल-धर।
युग वैज्ञानिक , चली मशीनें
श्रमिक बनी, बदला इतिहास,
श्रम के शोषण के विरुद्ध
अब अलख जगाती है घर-घर।

जिसमें अंकुर फूटा प्रेम का,
वह क्षण व स्थिति सजनी है।
बिछुड़ी तो झेला विछोह,
वह सहनशीलता सजनी है।
जिससे बना हृदय निस्वार्थ
सोच सामाजिक सजनी है।
जिसने रची यह जीवन कविता
शब्द लेखनी , सजनी है।

क्षणिक नहीं यह प्रश्न तर्क,
कविता की मेहनत वर्षों की।
अक्षर-अक्षर में से आती
सौंधी सुगन्ध संघर्षो की।
काल खिलाड़ी गेंद फेंकता
सदा ही जग के पाले में,
परिस्थितियों के संग बदलो
पुस्तक मूल सिद्धांतों की।

बन औषधी मानवता के
घाव भरने आई है।
सबके हित मे परम कार्य
सजनी करने आई है।
नियम उलंघन का परिणाम
दण्ड, भय दिखलाने वालो,
सजनी शीश हथेली रख
सच हेतु मरने आई है।

यह स्थिती कौन फ़िर बदलेगा
यदि कविता का पग फ़िसल गया?
न करना आस कभी समता की,
आज यत्न जो विफ़ल गया।
भवन नहीं अब झोंपड़ियों में
वह जन, नव इतिहास लिखेगा,
सजनी का आहवान सुन,
निज घर फूँक जो निकल गया।

बन 'सजनी' कविता ढूँढ रही,
ऐसे विद्रोही, बलिदानी
जो कटा शीश, धर हस्त, लड़े
पर कभी पराजय न मानी।
नीले रंग में रंगी झोंपड़ी,
लाल फसल उगी खेतों में
यह पौराणिक कथा नहीं,
कोई हवा चलेगी तूफ़ानी।

खण्ड– 9

कोई महार्षि, कोई महाराजा,
चमत्कारी कोई अवतारी।
शूद्र-स्वर्ण न सम कर पाया,
पाँव धरा, बना पत्थर नारी।
अचरज भरी कथाओं से,
पन्ने भरे पुस्तकों के,
ऊँच-नीच का उत्तर न दे,
हर पुस्तक से प्रश्न यह भारी।

इसी प्रश्न का बोझ उठाने
मैं बचपन से तत्पर हूँ।
वर्षों झेली देह पर कविता,
अब मैं इस पर निर्भर हूँ।
मिट्टी संग, मिट्टी हुए मानव
लगे हमेशा प्रिय मुझे।
कागज खेत, हल लेखनी,
सोच बीजता अक्षर हूँ।

मेरी यही सोच मेरी सजनी,
मेरे यत्न मेरी कविता।
मुझमें, कविता और सजनी में
अन्तर नहीं सूत भर का।
याद नहीं जीवन बगिया में
कितनी ऋतुऐं आईं गईं,
सच का पुष्प न मुर्झाये
मुझे इन्तज़ार उस मौसम का।

नभ से उतरी कविताऐं
चमत्कार बन जाती हैं।
गाथाऐं और परी कथाऐं
मिथ्या संसार बनाती हैं।
महिमा-मण्डित , अर्धसत्य
शोषण का पोषण करती।
आँखें मूंद यथार्थ से
पुण्य व पाप पढ़ाती हैं।

स्वर्ग नरक फ़िर पुनर्जन्म,
उस पर जून चौरासी लाख।
मन्दिर , पण्डित, देव भाग दे,
मेहनत मलती खाली हाथ।
कहने को तो मेरे पास भी
रवि , शशी , नभ, तारे, फूल,
लेकिन मैं अपनी कविता में
करूँगा मेहनतकश की बात।

स्वर अक्षर से बने शब्द,
शब्दों ने पढ़ा यथार्थ को।
बनी पंक्तियाँ कविता सज गई,
निकली लोक हितार्थ को।
पर हित ताप, तपी रात दिन,
तब सजनी कहला पाई।
मानव पीड़ा कम करने को
छोड़ दिया निज स्वार्थ को।

धर्मों में हो सके न तुलना
कविता यह समझाती है।
सृष्टि ही है मूल , भेद यह,
मानव को बतलाती है।
सबके साँझे जग निर्माण के
अचरज भरे रास्तों पर,
सबको साथ लिये चलती
यह कविता सबकी साथी है।

मृत्यु लोक नहीं यह जगती
जीवन लोक कहाती है।
नव दर्शन से सजनी अवगत
दुनिया को करवाती है।
प्रकट प्रजा में हो जाये
तो धरा सूंघते सिहांसन,
रंक शिख़र पर ले जाने को
नव सोपान बनाती है।

सर्वप्रकृति को दिखलाया
प्रगति पथ जिनके श्रम ने।
सदा सामाजिक तन्त्र बदला
खाली पेट, नग्न तन ने।
मुख्यधारा छोड़ लेखनी
जाऐ यदि हाशिये पर,
खोजे, कितने पुष्प सुगन्धित,
खोये मानव उपवन ने।

नहीं हाथ में कोई पुस्तक,
विकार, विचार से मन खाली।
दिखलाऐगी तेरी रगों में,
दौड़ रही तेरे लहू कि लाली।
गाँव-शहर की गलियों में,
तुझे ढूँढती फिरती है।
तुझे जगाये बिन अब कविता,
नहीं लौट कर जाने वाली।

अपना रास्ता और लक्ष्य
सोचो, चलो, बनाओ तुम।
तोड़ भ्रम, भय परलोकों का
अपना लोक बचाओ तुम।
घोर निराशाओं ने तोड़ा
जो था रिश्तों में विश्वास,
तुम्हें पुकार रही कविता
एक बार मेरे संग आओ तुम।

लड़ो कि अपने पूर्वजों का
ऋण अभी तुम्हें चुकाना है।
लड़ो कि नई पीढ़ियों का
भविष्य मधुर बनाना है।
लड़ो, तुम्हारा वर्तमान
परिवर्तित होना चाहता है।
श्रम शक्ति को कर्महीन के
छल से अब टकराना है।

कोई देवता कोई अप्सरा,
धर्म प्रवर्तक न अवतार।
श्रम वाहक, तत्व प्रगति का
श्रम से चेतना का विस्तार।
श्रमिक एकता और संघ पथ,
बदले सदा व्यवस्था को।
कर्महीन रचे घोर आडम्बर,
किन्तु श्रम सृष्टि का सार।

इसी लिए श्रम करने वालो,
तुम सजनी की बात सुनो।
तमस चीरकर श्रम का सेतु,
लाया नव प्रभात सुनो।
समय गति को जकड़ के रखना
दिशा मोड़ दो दिनकर की,
मुख्य पन्ने पर यह कविता
लिखे तुम्हारी बात सुनो।

पूर्वजों से मिली धरा
उपभोग के संग समृद्ध करो।
सौंपो अगली पीढ़ी को
अपना कर्तव्य सिद्ध करो।
चोटी पर न पहुँचो तो
किसी और के लिये सोपान बनो।
परमार्थ का पथ स्वोंत्तम,
चलो और प्रसिद्ध करो।

नव सोपान बनाने हेतु
सजनी समय से टकराई।
तेरे हिस्से की ऊँचाइयां
तेरे घर लेकर आई।
अलख जगाऐ, खोलो अपने
घर के बन्द दरवाज़ों को,
देने को कुछ पास नहीं
है केवल तेरी सच्चाई।

खण्डन करे जो शौर्य की
जन्म वर्ण आधारित रीत।
सृजन कला जिनके कर मे,
वही लोग धैर्य के प्रतीक।
करें संरक्षित , निर्मित सृष्टि
सजनी उनको दे आवाज़,
वे भविष्य के तर्क सिपाही
लड़ेंगे रण होकर निर्भीक।

प्रयास किया है कविता ने
ले आई हाशियों की टोह।
पृष्ठों पर हर शब्द के सम्मुख
सोच खड़ी बनकर विद्रोह।
झूठ निरन्तर डरा हुआ
इतिहास छोड़ने को तैयार।
फूट रहे नव जीवन अकुंर
छोड़ पुरातन जड़ का मोह।

पुष्पों में कुछ नई सुगन्ध है,
नए स्वर में भँवरे गाऐं।
वटी में उत्तम बुलबुल नृत्य,
संग तितलियाँ ताल मिलाऐं।
कहे लालिमा पूर्व की, करो
आज स्वागत दिनकर का,
हो सकता है सोच के ख़ग को
नए पंख किरणें दे जाऐं।

चहुँ ओर से तेरे पक्ष में,
भीड़ निरंतर बढ़ी मिलेगी।
अवरोधों से मत घबराना,
पथ बाधाएं बड़ी मिलेंगी।
जब अपने हिस्से के युद्ध में
लगे, अकेले रह गए तुम,
तर्क मशालें हाथ में पकड़े,
राह पर सजनी खड़ी मिलेगी।

नई सोच, नव दर्शन का,
प्रभाव पड़ा मानव मन पर।
बली, रथी का बीत चुका युग,
रण में तर्क खड़ा तन कर।
सदियों से निराश हृदय के
पट खोलो बाहर निकलो,
समय अन्धेरी मुण्डेरों पर
चमक रहा दिनकर बनकर।

अब न्याय पर रहे न पहरा
किसी देव व मंत्र का।
समय ज्ञान व विज्ञान का
युग तकनीक व यन्त्र का।
हीन भावना त्यागो अब सब
सम्मानित व अधिकृत हैं,
खड़ा करो समता की नींव पर
भवन सामाजिक तंत्र का।

खादानों, भवनों, सड़कों के
श्रमिको, मेरी आवाज सुनो।
क्रान्ति के शिल्पी कृषको,
इस परिवर्तन का नाद सुनो।
तुम्हारे श्रम ने अवचेतन में
बीज बो दिए न्याय के,
तुमने ही की सजनी रचना
इसका स्वर व राग़ सुनो।

लाखों शोषित मेरे देश के,
मेरे साथी मेरे सहायक।
गंगू तेली, गंगू मोची,
मेरी कहानी के जननायक।
मेरी लेखनी नहीं जानती,
सुरा - सुराही -सुरबाला।
लहू आँख से टपक रहा,
मैं कैसे लिखता मधुशाला।

मैं तुलसी सा कवि नहीं
जो लिखता रामचरित मानस।
सम-तुल्य न ऋषि व्यास के,
जो रच पाता महाभारत।
मैं जन्म-जन्म का विद्रोही,
प्रतिद्वदीं राज सिंहासन का।
न कभी समर्थन कर पाया,
सत्ता , शासक और शासन का।

बिना दया के धर्म झूठ है,
बिना मौन कैसी शान्ति?
वहाँ खोखली सुख समृद्धि
जहाँ सगं हो भय, भ्रान्ति।
भूख न मिटती ले जाने से
भूखों को किसी तीर्थ पर,
ताल ठोंक कर कहती सजनी
हर शोषण का हल क्रान्ति।

इसीलिए लिखता हूँ कविता,
नावों और मल्लाहों पर।
चर्मकार की सृजन कला पर,
चरागाह और चरवाहों पर।
बढ़ई, गडरिया, धोबी, तेली,
बुनकर और लोहार की कविता।
क्षमा करो, मैं लिख न पाया,
राजा के दरबार की कविता।

जहाँ सोच पर पहरे हों,
चलने पर भी हो बन्धन।
हर पल, हर स्तर, हर घर में,
जनमानस करता हो क्रन्दन।
उस समाज में नेतृत्व से,
प्रश्न न हो तो क्यों न हो?
चर्चा से हल न निकले फिर
दहन न हो, तो क्यों न हो?

इससे पहले जग में बिखरा,
दर्द समेटूँ गीत बनाऊँ।
सोच रहा, कहने से पहले,
सुनने वालों को समझाऊँ।
दुनिया में जब भी क्रान्ति की,
चिगांरी कोई सुलगती है।
कविता रणभेरी बनती है,
कविता आग उगलती है।

अन्तरात्मा की पुकार हो,
न तन की, न मन की कविता।
सोच रहा यूँ चले लेखनी,
मैं लिख दूँ जन-जन की कविता।
विश्व भावना की प्रेरक हो,
सरहद की दीवारें तोड़े।
वह कविता संसद में गूंजे,
वह कविता सड़कों पर दौड़े।

समय फेंकता जाता पासे,
चलती है जीवन की क्रीड़ा ।
प्रेमी का 'आह' नहीं सजनी,
है एक विचारक की पीड़ा।
कुछ अनुभव, कुछ अनुभूति,
कड़वाहट भरी सच्चाई है।
जन-मुक्ति की अलख जगाने,
कविता बन कर आई है।

मेरे संग-संग दौड़ रही है
कलम, अनोखी राहों पर।
घूम-घूम आवाज़ दे रहा,
गलियों और, चौराहों पर।
जीवन गाथा फिरूँ सुनाता,
अंगुली पकड़ सजनिया की।
एक कहानी तेरी - मेरी,
एक कहानी दुनिया की।

गुज़र गई अनगिनत पीढ़ियाँ,
न बदली न विचलित सजनी।
न सुख में संलिप्त हुई,
न विपदा में चिन्तित सजनी।
मृत्यु भय की तोड़ सीमाएं,
जीवन के लिए तर्क बनी।
हर पग जाँची हर युग परखी,
सही ग़लत का फ़र्क बनी।

अगणित संकट हर लिए मेरे,
मुझ बलहीन को सबल किया।
नित्य, शाश्वत दृढ़ सजनी ने,
मुझको कितना बदल दिया।
यह बदलाव अति मनमोहक,
दूर निकट का भेद नहीं।
जो मिला वही अपनाया मैंने,
जीवन से कोई खेद नहीं।

कहते हैं प्राचीन हो तुम,
मुझे लगता नयी, नवीन् हो तुम।
हर युग में मानव की पीड़ा,
हरने में प्रवीन् हो तुम।
जब-जब मानव राह भटके,
बन कर के कविता आती है।
सजनी गाथा अमर प्रेम की,
घर-घर कही, सुनी जाती है।

जहाँ मन्ज़िलों को छूने की,
राह कोई अवरुद्ध न हो।
उड़े क्षितिज पर जा पहुंचे,
मन के कोई विरुद्ध न हो।
जहाँ गर्व से जीना मरना हो,
ऐसी दिशा दिखा सजनी।
फल-फूल सकें सब लोग जहाँ,
कोई ऐसा गाँव बसा सजनी।

न लिंग भेद , न वर्ण भेद,
कोई शोषित, न शोषक हो।
सोच, विचार, व्यव्हार कर्म,
सब मानवता के पोषक हों।
इस पावन अभियान में सजनी,
तुम सन्तुलन बना कर चलना।
दीया हाथ का बुझ जाये तो,
दिल में आग जला कर चलना।

सोने वालो जाग उठो,
शिख़रों की राह बुलाती है।
नये साज़ पर राग़ जीत का,
कविता तुम्हें सुनाती है।
आँखें मून्द इसे मत सुनना,
सजनी कोई उपदेश नहीं।
जीने का व्यव्हारिक दर्शन,
मृत्यु का सन्देश नहीं।

सजनी है नव चिन्तन धारा,
वेद, पुराण वेदांत नहीं।
स्वंय सिद्ध स्वतन्त्रता है,
धर्म, नियम, सिद्धान्त नहीं।
नयी दिशाएं, नये लक्ष्य,
मानव नया, समाज नया।
गूंज रही है जीवन कविता,
कहने का अन्दाज़ नया।